तांग्सा आदिवासी समुदाय के लोककथाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

- रेमोन लोंग्कु

शोध सार:

तांग्सा आदिवासी समाज में लोककथा सुनाने की संस्कृति आदिम युगों से प्रचलित है । यह संस्कृति इतनी पौराणिक है कि तांग्सा समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा के रूप में चलती हुई आ रही हैं । तांग्सा लोग लोककथा को उनकी अपनी मातृभाषा में 'रंग्सुक मनफन' कहते हैं । वे मानते हैं कि लोककथा की उत्पत्ति पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ-साथ हुई थी । तांग्सा आदिवासी के विषय में आज भी कई लोग अपरिचित हैं । इसके पीछे यह भी एक कारण है कि तांग्सा आदिवासियों के इतिहास, संस्कृति या समाज सपष्ट एवं विस्तृत रूप से टंकित रूप में उपलब्ध नहीं है । ऐसी स्थिति में तांग्सा आदिवासियों के संदर्भ में शोध पत्र के माध्यम से परिचित कराना अत्यंत महत्वपूर्ण है । तांग्सा लोककथाओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन से उनका इतिहास, समाज एवं संस्कृति के कई रहस्यमय तथा पहलुओं प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो सकते हैं, जिससे वर्तमान समाज को एक मौलिक एवं नवीन महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है ।

बीज शब्द: टंकित, तांग्सा, नोंग, मनफन, मासोइ, रल, लोक, सिकिया, हाअ्खो, हुकोंग

मूल आलेख:

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र के अंतर्गत आठ राज्य आते हैं जैसे अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम और मिजोराम । इन आठ राज्य में से अरुणाचल प्रदेश सबसे अधिक आदिवासी समुदाय एवं उपसमुदाय के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ छब्बीस आदिवासी समुदाय एवं सौ से अधिक उपसमुदाय निवास करते हैं । प्रत्येक समुदायों की भाषा एक दूसरे से भिन्न है । इसी प्रकार तांग्सा समुदाय जो अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग जिला के मूलनिवासी हैं, उनकी भाषा, इतिहास, संस्कृति तथा समाज भी अन्य समुदाय से भिन्न हैं । तांग्सा आदिवासी अरुणाचल प्रदेश के सबसे अधिक उपसमुदय के लिए जाना जाता है । इस समुदाय में तेईस से अधिक उपसमुदय हैं जैसे लोंग्चांग, मुक्लोम, जुगली, मोसांग, किम्सिंग, तिखाक, सांके, रोंरांग, लुन्ग्फी, मोरांग, लुन्गरी आदि । 'तांग्सा' शब्द 'तांग्सांग' शब्द से बना है । 'तांग' का अर्थ है 'पहाड़' और 'सा' का अर्थ है 'निवासी' अर्थात 'पहाड़ के निवासी या लोग' । तांग्सा समाज आदिम युगों से यह मानते आ रहे हैं कि उनकी उत्पत्ति प्रकृति से हुआ है, इसलिए वे तांग्सा कहलाते हैं । हाअ रोंग, मोल और पक रोम इनके प्रमुख त्यौहार हैं जिसमें प्रकृति और पुरखा को पूजने की आदिम परंपरा हैं । इसकी जानकारी तांग्सा लोककथा में भी मिलती है । तांग्सा

लोग आज भी मानते हैं कि वे बर्मा पर्वत के 'मासोई सिनारापुम' नामक स्थान से प्रवास करते हुए आये थे । उनके अनुसार इस प्रवास संघर्ष के पीछे की कारण युद्ध और आहार की समस्या थीं । डॉ. इंदिरा बरुआ ने अपनी एक पुस्तक में इसकी जानकारी देते हुए लिखा है -"The Tangsa have their original home in Burma hill called Masoi Sinarapum in the Hukong valley."[1] अर्थात वास्तव में तांग्सा समुदाय बर्मा पर्वत के मासोई सिनारापुम के निवासी थे, किन्तु इनके विभिन्न उपजसमुदाय होने के कारण आपसी युद्ध होते रहते थे जिसके कारण वे धीरे-धीरे प्रवास करने लगे । तांग्सा लोगों की अपनी कोई लिपि नहीं है, परन्तु वर्तमान इस पर विचार किया जा रहा है । वे अपने लोकसाहित्य को वाचिक परंपरा के रूप में संरक्षित करते हुए आ रहे हैं । तांग्सा लोकसाहित्य के पाँच स्वरूप हैं - लोककथा, लोकगीत, लोकगाथा, लोकनृत्य तथा लोकसुभाषित । इस लोकसाहित्य में लोकनाट्य मौजूद नहीं है, क्योंकि तांग्सा समाज में लोकनाट्य की परंपरा नहीं है ।

प्रत्येक लोकसाहित्य में समाज का जीवन मौजूद रहता है । उस समाज के जीवन में ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्य रहते हैं । मानव समाज के बिना अपूर्ण है । समाज मानव को सामुदायिकता और एकता प्रदान करती हैं । इसी प्रकार समाज के तथ्य को खोज निकालने के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । लोकसाहित्य भी समाज का एक अंग है जिसमें समाजशास्त्रीय मौजूद हैं । समाजशास्त्र विचारक ऑगस्ट काम्टे ने समाजशास्त्रीय के विषय में कहा है- "जिस प्रकार भौतिक विज्ञान भौतिक वस्तुओं को समझते हैं वैसे ही समाजशास्त्र भी समाजशास्त्रीय यथार्थता को समझ सकता है । तात्पर्य यह हुआ कि भौतिक विज्ञानों की तरह समाजशास्त्र भी एक सामाजिक विज्ञान है ।"[2] इस प्रकार तांग्सा जनजाति के लोककथाओं को समझने के लिए समाजशास्त्रीय की दृष्टि से पाँच परिप्रेक्ष्य के आधार पर देखा जा सकता हैं - 1.ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, 2.सामाजिक परिप्रेक्ष्य, 3.राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, 4.आर्थिक परिप्रेक्ष्य एवं 5.सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य ।

1.ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

तांग्सा आदिवासी समुदाय का इतिहास और उनकी उत्पत्ति से लेकर दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न हिस्सों तक प्रवासन एक लम्बी प्रक्रिया है । तांग्सा लोग प्रवासन के विभिन्न चरणों से गुजरे थे और विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा । उन्होंने एक विशेष क्षेत्र में बसते समय विभिन्न एहतियाती कदम उठाए । इसके पीछे यह कारण है कि अधिकाँश तांग्सा समुदाय के गाँव पहाड़ियों पर स्थित थे । ऐसा उन्होंने अपनी सुरक्षा एवं रणनीतिक कारणों से किया था । तांग्सा लोगों ने प्रवास के लिए कई मार्गों का उपयोग किया था । सभी उपसमुदाय एक साथ नहीं चलती थीं । उनके इतिहास एवं प्रवास के संदर्भ में 'द तांग्सास' पुस्तक में लिखा है - "The history of man', as Hendrick Van Loon has said, 'is the record of hungry creatures in search of food

plentiful thither man has traveled to make his home.' Though there is no written record as to how and through which route the Tangsa's came into the hills which they now inhabit, yet it is probable that at least list a few hundred years ago they moved about in search of cultivable lands for their livelihood, far away from their original home and so reached their habitat. Even today, the main cause of dispute amongst the different subtribes relates to cultivable lands."[3] अर्थात 'हिस्ट्री ऑफ़ मैन' कहे जाने वाले हेंड्रिक वान ने कहा है, 'भोजन की तलाश में भूखे प्राणियों का रिकॉर्ड प्रचुर मात्र में था, जहाँ मनुष्य ने अपना घर बनाने के लिए यात्रा की थी ।' हालाँकि इस बात का कोई लिखित रिकॉर्ड नहीं है कि तांग्सा कैसे और किस रास्ते से उन पहाड़ियों में आए जहाँ वे अब रहते हैं, फिर भी यह संभव है कि कम से कम सौ साल पहले वे अपनी आजीविका के लिए खेती योग्य भूमि की तलाश में बहुत दूर चले गए हों । अपने मूल घर से बहुत दूर चले गए और पहुँच गए जहाँ वे अब रहते हैं । आज भी विभिन्न उप-जनजातियों के बीच विवाद का मुख्य कारण खेती योग्य भूमि को लेकर है । अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग जिले को अपना घर बनाने से पहले वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले गए और कई स्थानों पर रहे । तांग्सा समुदाय की मौखिक ऐतिहासिक साहित्य इस तथ्य की दृढ़ता से गवाही देता है कि वे मूल रूप से दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के थे । कहा जाता है कि तांग्सा लोगों का मूल घर हुकोंग घाटी में मासोई सिनारापम नामक बर्मा पहाड़ी में थे । किन्तु प्रवास के संबंध में विभिन्न उपसमुदाय की अपनी-अपनी व्याख्या एवं मत है, इसलिए एक ही दृष्टिकोण को स्वीकार करना कठिन है । अपनी समुदाय के उत्पत्ति को लेकर तांग्सा लोगों की उपसमुदाय का भिन्न-भिन्न लोक-विश्वास हैं जैसे लुन्गरी उपसमुदाय की मान्यता है कि मासोई सिनरापम में एक बड़ा पेड़ था, जिसमें से दो इंसान, एक पुरुष और एक महिला निकले जो बाद में पूरी दुनिया की रचना की । वे इस विशाल वृक्ष को 'सिकिया' अर्थात पुरखा मानते हैं । किमसिंग उपसमुदाय भी कुछ इसी प्रकार मानते हैं । उनके अनुसार, डोम्बे (पुरुष) और निवा (महिला) दो व्यक्ति थे जिन्होंने मासोई सिनरापम में अपने सभी प्राणियों के साथ इस दुनिया का निर्माण किया । दुनिया बनाने के बाद वे कहीं गायब हो गए । इन दोनों को 'फ्राह' अर्थात पुरखा कहते हैं । जुगली उपसमुदाय का मानना है कि मनुष्य की रचना सबसे पहले मासोई सिनरापम में हुई थी, लेकिन 'रंग काउ वाअ्' अर्थात प्रकृति पुरखा के द्वारा । इस प्रकार तांग्सा की सभी उपसमुदाय इस विश्वास को मानती हैं कि मानवों की उत्पत्ति सबसे पहले मासोई सिनरापम नामक स्थान से हुई थीं । हालाँकि, उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं जैसे रंग कोउ वाअ्, प्रा, फ्राह, सिकिया आदि । इससे यह पता चलता है कि उत्पत्ति की कथा भले ही भिन्न हो, किन्तु उत्पत्ति की स्थान को वे मासोई सिनरापम ही मानते हैं जिससे सभी सहमत हैं ।

2.सामाजिक परिप्रेक्ष्य

तांग्सा समाज में सामुदायिकता एवं एकता बनाये रखने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है । इस समाज में वर्ण व्यस्वस्था की प्रथा मौजूद नहीं है । यहाँ के लोग आज भी फसल बोने तथा काटने में एक-दूसरें की सहायता करते हैं और आज भी जब शिकारी जंगल से शिकार मारकर लाते हैं तो गाँव के सबके घरों में बाँटते हैं । ऐसा न करने पर शिकारी के लिए अपसगुन माना जाता है । वे मानते हैं कि जंगल से प्राप्त हुए शिकार हाअ्खो अर्थात प्रकृति पुरखा की देन है, और वह सभी गाँव वालों के लिए उपहार के रूप में देते हैं । इसी सामुदायिक भाव एवं एकता को बनाये रखने के प्रति 'रिजुम हाअ्-रीमा हाअ्' अर्थात रिजुम पर्वत और रीमा पर्वत नामक एक तांग्सा लोककथा है । कहा जाता है कि युगों पहले रिजुम पर्वत और रीमा पर्वत नामक दो पहाड़ थे । उस पहाड़ के बीच एक गाँव था । उस गाँव में एक बूढ़ी दादी और विकलांक पोती रहती थीं जो बहुत गरीब थे । एक दिन गाँव वालों ने विशाल मछली का शिकार किया और उस मछली को सबके घरों में बाँटा गया, किन्तु उन लोगों ने उन बूढ़ी दादी और पोती को नहीं दिए । जिस कारण एक दिन पूरा गाँव झील में समा जाता है किन्तु वे दादी और पोती बच जाती हैं । यह कथा तांग्सा समाज को नैतिक उपदेश देता है कि प्रकृति द्वारा प्राप्त आहार सबके लिए समान है । यदि गाँव के किसी एक घर को भी छोड़कर उस शिकार को न बाँटा जाये, तो इसे प्रकृति के नियम का प्रतिरोध माना जाता है । अत: यह नियम तांग्सा समाज के लिए एकता का प्रतीक है जो आज भी वे अनुपालन करते हैं ।

3.राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

पुराने दिनों में तांग्सा समुदाय में आपसी युद्ध भी होती थी । इस युद्ध को वे रल, राई, रे भी कहते हैं । युद्ध से संबंधित एक लोककथा आज भी प्रचलित है । यह लोककथा ब्रिटिश शासन काल से संबंधित है । जब तांग्सा समुदाय रल युद्ध (जिसे अंग्रेजी में हेडहन्टर्स वार के नाम से जाना जाता है) धीरे-धीरे छोड़ रहे थे, तब अकस्मात उनके साथ एक और त्रासदी हुई । युगों पहले तांग्सा समुदाय के लोग व्यवसाय के लिए मैदानी इलाकों में अक्सर यातायात करते रहते थे । वहाँ नमक और दाओ खरीदने के लिए वे खेतों के फसल द्वारा सौदा कर के गाँव लौटते थे । ब्रिटिस शासन काल के दौरान मैदानी इलाके असम की ओर जाने के लिए वे समूह में साथ चलते थे । एक दिन ऐसा ही कुछ हालुन और मोलोंग गावों के दो व्यक्ति असम की ओर दाओ खरीदने गए । मोलोंग गाँव की व्यक्ति ने दाओ की चोरी की और जब चोरी पकड़ी गई तो सारा दोष हालुन गाँव के व्यक्ति पर लगा दिया । वहाँ के कुछ ब्रिटिश सैनिकों ने उसकी खूब पिटाई कर डाली । मोलोंग गाँव का व्यक्ति हालुन के व्यक्ति को फ़साने के बाद वहाँ से वह तुरंत रफ़ा-दफा हो चूका था । हालुन का व्यक्ति जैसे-तैसे अपनी जान बचाकर वहाँ से भागकर अपने गाँव लौटा । फिर यह किस्सा अपने गाँव वालों को कह सुनाई, जिससे हालुन के गाँव वालों ने प्रतिशोध की ज्वाला में मोलोंग गाँव वालों से युद्ध की एलान कर डाली । इस युद्ध में बुजुर्गों

की परिषद किसी गाँव पर हमला करने के लिए निर्णय लेते थे । केवल महिलाओं, बच्चों, बूढ़े तथा विकलांग पुरुषों को छोड़कर पूरे गांव इस युद्ध में भाग लेते थे । एक युद्ध का संचालन सेराई नामक नेता किया करते थे । उन्हें सर्वश्रेष्ठ सेनानियों में से उनकी शारीरिक शक्ति और बुद्धिमत्ता के लिए चुना जाता था । उनके बगल में लाकोंग अर्थात सेनापति होता था, जो दल के पिछले हिस्से को लेकर आते थे । सैनिकों को बुटान कहा जाता था । वे सभी नेता के प्रति वफादार होते थे और उनकी आज्ञाओं का पालन करते थे । भोर में अचानक हमला करना छापेमारी का पसंदीदा तरीका था । आश्चर्यजनक हमलों के अलावा, कभी-कभी मजबूत गांव तीर की नोक पर मुर्गे का सिर फेंककर, या **'कालो, कालो, राते, मन्या मिबा रातै कालो'** चिल्लाकर, दूसरे गांव को करीबी और खुली लड़ाई के लिए चुनौती देते थे । जिसका मतलब है, 'हम तुमसे लड़ने आ रहे हैं यदि गाँव में कोई मर्द है तो बाहर आ जाओ' । युद्ध से पहले मुर्गा को मार कर शगुन का अध्ययन किया जाता था । यदि मृत मुर्गे का सिर शत्रुओं के गाँव की ओर हो, तो इसे अच्छा सगुन माना जाता था । अन्यथा, अभियान छोड़ दिया जाता था जिसे वे उतान कहते थे । युद्ध में विजय प्राप्ति के बाद शत्रुओं के सिर और हाथों को गाँव में ला कर एक विजय समारोह का आयोजन किया जाता था जिसे वे मोई या माई-नगम-सिप कहा जाता था । वे इन्हें गाँव की सीमा के बाहर एक बड़े पत्थर जिसे वे लंग-लैंग-चुंग कहते हैं, के पास दफना दिया जाता था । सातवे दिन के बाद कंकालों को खोदकर निकालते थे और गाँव ले आते थे । उसके बाद, गाँव की नेता उस कंकाल सिर को फोड़ देते थे और हाथों की हड्डियाँ को अन्य ग्रामीणों में बाँट दी जाती थी । वे उन हड्डियों को अपने-अपने घर ले जाते थे और घर के बाहर वाले कमरे में बाँस की दिवार पर लटका देते थे । रल-युद्ध करने की पीछे अन्य यह भी एक कारण था कि यदि कोई गाँव वाले दुश्मनों की हत्या नहीं करेंगे, तो वे उनसे अधिक ताकतवर बन जाएँगे और उनकी तादाते बढ़ जाएगी जिससे उनके लिए खतरा बन सकता था । कंकालों को अपने-अपने घरों में रखने के पीछे एक और यह भी कारण था कि गाँव में जब दुश्मन हमला करने आएँगे तो उन कंकालों को देखकर ये समझने लगे कि इस गाँव में इतने सारे कंकाल हैं अर्थात वे हम से अधिक शक्तिशाली हैं । फिर युद्ध करने से डर कर वापस लौट जाए । हालांकि, वर्तमान तांग्सा समाज अब इस युद्ध और परंपरा को पूरी तरह त्याग चुके हैं ।

4.आर्थिक परिप्रेक्ष्य

तांग्सा समाज का आर्थिक जीवन कृषि पर निर्भर है । खेत द्वारा प्राप्त अनाज से ही उनका घर चलता है । इसके अतिरिक्त आहार के लिए जंगलों से शिकार करना तथा जंगली साग द्वारा व्यवस्था होती थी । किन्तु पुराने दिनों में आकाल की भी समस्या दिखाई देती थी । खेत का फसल खराब हो जाना या खेत की मृदा में कमी आना, उन दिनों चार-पाँच वर्षो में एक-दो बार आमतौर पर यह देखने को मिलता था जिसके कारण उन्हें साल भर भुखमरी की समस्या का सामना भी करना पड़ता था

। भुखमरी से बचने के लिए बचे-खुचे अनाज द्वारा तथा पशु-पक्षियों के मांस द्वारा उनका जीवन चलता था जिनके घरों में कोई शेष अनाज नहीं बचते और इसके साथ-साथ यदि परिवार जंगलों से आहार ढूँढने में भी असक्षम हैं तो ऐसी स्थिति में भुखमरी से मृत्यु होना साधारण बात थी । इससे संबंधित एक लोककथा 'तुन्ग्कुंग यांग' अर्थात 'कच्चू की सब्जी' प्रस्तुत है । यह गाँव के एक ऐसे परिवार की कथा पर आधारित है जो भुखमरी की समस्या का सामना कर रहे हैं । इस कथा में एक विधवा और उसके दो बेटे होते हैं । खेत में आकाल पर जाने से उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं होता । कई दिनों तक उन्हें भूखा रहना पड़ता है । एक दिन माँ ने चूल्हे पर बर्तन में पानी और पत्थर डालकर पकाने लगी । माँ ने बच्चों से झूठ कहा कि बर्तन के भीतर कच्चू की सब्जी पकाई जा रही है । जैसे ही पक जायेगी, भर पेट भोजन करेंगे । बच्चे भूखे और नींद में लगातार पूछे जा रहे थे कि ये भोजन कब पकेगा ? माँ कहती रही बस थोड़ी देर और...थोड़ी देर और...फिर बच्चे भूखे ही सो गये । यह कथा परिवार की एक ऐसी आर्थिक स्थिति को दर्शाती है जिसमें भूखमरी की समस्या है । यदि माँ बच्चों से कह देती कि उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं है और कई दिनों तक उन्हें भूखा ही रहना पड़ेगा, तो बच्चे उदास हो जाते और रोने लगते । इसलिए माँ ने बच्चों को सुलाने के लिए झूठ बोली । इस प्रकार इस लोककथा के माध्यम से तांग्सा समाज के आर्थिक स्थिति के तथ्य को समझा जा सकता है । आकाल पड़ने की समस्या आज भी तांग्सा समाज के कृषि जीवन पर देखने को मिलता है किन्तु आज इतना नहीं कि लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़े ।

5. सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

तांग्सा लोककथाओं में संस्कृति से संबंधित अनेक संदर्भ पाई जाती हैं । 'नोई ना लोक' लोककथा में ढोल की उतपत्ति का संदर्भ प्राप्त होता है, जिसमें एक युवक आहार के लिए ढोल का निर्माण करता है तथा गोवों में घूम-घूमकर ढोल बजाता है ताकि लोग ढोल की मधुर आवाज़ को सुनकर उसे भोजन दें । कहा जाता है कि आज तांग्सा जनजाति के लोग जिस ढोल को संस्कृति के रूप में प्रयोग कर रहे हैं, वह उसी युवक द्वारा उत्पत्ति हुई थी । ढोल को तांग्सा भाषा में 'नोंग' कहते हैं । ढोल बजाने की परंपरा तांग्सा समाज में त्यौहार के दिन संस्कृति के रूप में आज भी प्रचलित है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार तांग्सा आदिवासी समुदाय की अनेक लोककथाएं हैं जिसे समाजशास्त्रीय की दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है । समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा तांग्सा लोकसाहित्य की अनेक रहस्यमय एवं पहलुओं का उजागर किया जा सकता है । आज भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि इसका प्रभाव केवल तांग्सा लोकसाहित्य में ही नहीं, उनकी भाषा एवं

संस्कृति पर भी पड़ रहा है । जिस समुदाय की अपनी कोई लिपि नहीं है, उस समुदाय की भाषा एवं संस्कृति पर भूमंडलीकरण और बाजारवाद का प्रभाव या अतिक्रमण अत्यंत घातक सिद्ध हो सकता है । अत: इसे संरक्षित करने के लिए लिपि का निर्माण तथा विभिन्न भाषाओं में टंकित रूप प्रदान करने की अति आवश्यकता है ।

संदर्भ ग्रंच सूची

1.Indira barua, 2021 Year, 'The Tangsa's of Arunachal Pradesh: A socio demographic profile', concept publishing company pvt. Ltd-Delhi, P - 20.

2. एस.एल दोषी, 2022 ई, 'आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारक', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-7

3. Parul Dutta, 2010 Year, 'The Tangsas', G.M printers and publishers ganga market Itanagar, Arunachal Pradesh, p - 3,4

रेमोन लोंग्कु, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलोंग, मेघालय, 793022
मोबाइल नंबर: 9366268033, 9774791077, ईमेल: remonlongku1@gmail.com